IJAER/May-June- 2024/Volume-13/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

भारतीय ज्ञान परम्परा में धर्म–एक विवेचन

प्रो0 जया तिवारी

संस्कृतविभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

नैनीताल, उत्तराखण्ड

"धर्म भारतीयसंस्कृति का सर्वस्व है। भारतीयवाङ्मय में धर्म शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है। धर्म का सम्बन्ध मानव के आन्तरिक ,बाह्य के साथ आजीविका से भी है। हम अपने समस्त जीवन में समस्त प्राणियों के साथ मनसा–वाचा–कर्मणा कैसा व्यवहार करें, कैसे अपनी आजीविका चलाएँ, कैसा हमारा आचरण रहें इन सब की शिक्षा धर्म देता है। धर्म सत्य है, शाश्वत है और नित्य है, धर्म व्यक्ति को समाज में रहने योग्य बनाता है और परिवार, समाज तथा राष्ट्र को एकसूत्र में पिरोने का कार्य करता है। धर्म का सार यही है कि जो अपने आप को बुरा लगे, उसे दूसरे के लिए भी न करें। जो अपने को अच्छा लगे, उसे ही करें।"1

भारतीय ज्ञानपरम्परा का आदिस्रोत वेद हैं। वेद को आचार्य मनु ने धर्म का मूल कहा है तथा श्रुति वेद को और स्मृति धर्मशास्त्र को कहा है। ये दोनों सब विषयों में निर्विवाद हैं, क्योंकि इन्हीेंं से धर्म का प्रकाश हुआ है –वेदोऽखिलो धर्ममूलम् , श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वभौ– 2 अर्थात् धर्म को ठीक–ठीक जानना हो तो वेद तथा स्मृति–धर्मशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है।

वेद में धर्मशब्द कई स्थानों में विशेषण तो कई स्थानों में नाम हैं, ऋग्वेद में कहीं पोषण करना इस अर्थ में, कहीं नैतिक नियम एवं आचार अर्थ में, कहीं प्राचीन नीति–नियम अर्थ में है। अथर्ववेद में धर्म शब्द का अर्थ – धार्मिक आचार द्वारा मिलने वाला पुण्य है। छान्दोग्य–उपनिषद् में धर्म शब्द चार आश्रम के विशिष्ट कर्तव्य के अर्थ में आया है। तैत्तिरीय–उपनिषद् में धर्म शब्द सत्यं वद, धर्मं चर अर्थात् सत्य बोलो, धर्मानुसार आचरण करो इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।3 आचार्यमनु ने वर्णाश्रमविहित कर्म को धर्म कहा है तथा धर्म को वेदविशारद, रागद्वेष से रहित महात्माओं द्वारा हृदय से स्वीकार किया गया माना हैं। 4 महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार वेद और धर्म के जानने वाले चार मनुष्य या तीन मनुष्य की एक पर्षत् होती है, वह अथवा अध्यात्म विद्या का वेदान्त योग आदि जानने वाला एक ही मनुष्य जो कहे वही धर्म है–

चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षद्त्रैविद्यमेव वा।

सा ब्रूरते यः स धर्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः।।5

महर्षि कणाद ने धर्माचरण के परिणाम को दृष्टि में रखकर कहा है कि जिससे लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक उन्नति की सिद्धि होती है, वह धर्म है।6 आश्वलायनगृह्यसूत्र में– धारणात् श्रेय आदधाति इति धर्मः अर्थात् जिसके अनुसार चलने पर श्रेय (कल्याण) यश, उन्नति एवं मोक्ष होते हैं उसे धर्म कहा है। महर्षि जैमिनी पूर्वमीमांसा के अनुसार वेदविहित और फल देने वाला अर्थ धर्म है तथा उपदेश से, आज्ञा से, किंवा विधि से ज्ञात होने वाला श्रेयस्कर अर्थ धर्म है – वेदविहितप्रयोजनवदर्थे धर्मः। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। विश्वामित्र–स्मृति में कहा है कि –आगमवेत्ता आर्यगण जिस कार्य की प्रशंसा करते हैं, वह धर्म है तथा जिसकी निन्दा करते हैं, वह अधर्म है।7

महर्षि वेदव्यास ने धर्म को परिभाषित किया है– धारण करने से धर्म कहा गया है, धर्म प्रजा को धारण करता है, जिससे धारण किया जाता है वह निश्चय ही धर्म है।8 आचार्य चाणक्य के अनुसार– धर्मेण धार्यते लोकः।1। अर्थात् धर्म द्वारा लोक को धारण किया जाता है। धर्म शब्द धृ´ॅ धारणे धातु से "अर्तिस्तुसु––" इस उणादि सूत्र द्वारा मन् प्रत्यय से बना है।9 कोशकारों ने धर्म का पर्याय पुण्य, न्याय और आचारादि माना है, तथा कर्तव्य, जाति, सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन, नैतिक गुण आदि अनेक अर्थो में भी धर्म का उल्लेख किया है। 10

धर्म का शाब्दिक अर्थ के साथ व्यावहारिक अर्थ भी है जिसमें सभी धार्मिक क्रियाएँ जो कुछ भी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्रियाएँ जीवन में होती हैं वे भी धर्म के अन्तर्गत आती हैं। वे सम्पूर्ण कर्मकाण्ड एवं बाह्य क्रियाएँ जिनसे हमारी आत्मशुद्धि होती है धर्म ही है। धार्मिक क्रियाएँ धर्म के संकुचित अर्थ की सूचक हैं तथा जीवन व्यापार की व्यावहारिक क्रियाएँ व्यापक अर्थ की सूचक हैं। श्रुति अर्थात् वेद में धर्म का प्रयोग धार्मिक भावनाओं और कर्मकाण्डों के सन्दर्भ में हुआ है। स्मृतिग्रन्थों में वर्णित धर्म जीवन के विविध क्रिया–व्यापारों से सम्बन्धित हैं।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च कहकर धर्म के स्रोतों में वेद को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।11 गौतम धर्मसूत्र में वेद, स्मृति और शील तीनों को ही धर्म का प्रमाण बताया है।12 आचार्य मनु ने वेद, स्मृति, सदाचार और अपने मन की सन्तुष्टि को भी धर्म का प्रमाण माना है।13 महर्षि याज्ञवल्क्य ने श्रुति अर्थात् वेद, स्मृति (धर्मशास्त्र), धर्मशीललोग जो काम करते आये हों, अपनी आत्मा को जो प्रिय है और श्रुति संकल्प से उत्पन्न जो कामना

है ये सब धर्म के मूल कहे गये हैं।14 अ तथा धर्मनिर्णायक, धर्मप्रतिपादक, धर्मलक्षणनिरूपक तथा धर्मस्रोतों में पुराणांे को ही एक स्वर से सर्वप्रथम आद्य स्थान प्रदान दिया गया है। 14 ब इनके अतिरिक्त मीमांसा, न्याय, भाष्य अथवा निबन्ध सम्बन्धी ग्रन्थ जिसमें सामाजिक व्यवस्था का कुछ विवरण प्राप्त है तथा परिषद् जो धर्म के सम्बन्ध में नवीन परिस्थितियों में निर्णय देती थी को भी धर्म के स्रोतों में स्वीकार किया गया है।15

बृहद्धर्मपुराण के-पठ रामायणं व्यास काव्यबीजं सनातनम् कहकर सभी पुराणों में तथा शास्त्रों का भी बीज एकमात्र महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण कहा है। रामायण में धर्म की महिमा अद्भुतरूप से स्थापित है- एष विग्रहवान् धर्मः, रामो विग्रहवान् धर्मः।16 कहकर महर्षि वाल्मीकि के श्रीराम को साक्षात् धर्म का स्वरूप या मूर्तरूप कहा है, जिनसे धर्म कभी अलग नहीं होता और जो धर्म का कभी परित्याग नहीं करते, जो वेदों के साथ धनुर्वेद के भी पूर्ण मर्मज्ञ हैं, वे इक्ष्वाकुओं के अतिरथी राम है। अर्थात् धर्मस्वरूप श्रीराम ही हैं -

यस्मिन् न चलते धर्मो यो धर्मं नातिवर्तते।

यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः।17

जिनके सदाचरण एवं कर्तव्यनिष्ठता के कारण श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम कहे गये हैं, जो सत्यधर्मरूप सत्पुरुष हैं, सत्पुरुषों में सदा सत्यरूप धर्म का ही पालन हुआ है। भगवती सीता भी श्रीराम से कहती हैं-

धर्मिष्ठः सत्यसन्ध्यश्च पितुर्निदेशकारकः।

त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।।18

अर्थात् आप परम धर्मात्मा, सत्यवादी और पिता की आज्ञा पालन करने वाले हैं। आप में धर्म, सत्य तथा समस्त सद्गुणों की प्रतिष्ठा है। श्रीहनुमान्जी सीता माता को श्रीराम का परिचय देते हैं-

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः।

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता। 19

अर्थात् परंतप श्रीराम अपने चरित्र की, धर्म की, लोक की और चातुर्वर्ण्य की रक्षा करने वाले हैं। श्रीराम के चरित्र और आदर्श महान् हैं।

महाकवि कालिदास ने भी अपने महाकाव्य रघुवंशम् में रघुवंशियों का चरित्र वर्णित किया है- रघुवंशियों के चरित्र जन्म से लेकर अन्ततक शुद्ध और पवित्र रहे, जो किसी काम को उठाकर उसे पूरा किए बिना नहीं छोडते थे, जो समुद्र के ओर-छोर तक फैली हुई सारी धरती के स्वामी थे, जिनके रथ, पृथ्वी से स्वर्गतक सीधे जाया-आया करते थे, जो शास्त्रों के अनुसार ही यज्ञ करते थे,जो माँगने वालों को मन चाहा दान देते थे, जो अवसर देखकर ही काम करते थे, जो दान देने के लिए ही धन इकट्ठा करते थे, जो सत्य की रक्षा के लिए बहुत कम बोलते थे, जो अपना यश बढाने के लिए ही दूसरे देश को जीतते थे, जो सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही विवाह करते थे, जो बालकपन में पढते, तरुणाई में संसार के भोगों का आनन्द लेते थे, बुढापे में मुनियों के समान जंगलों में रहकर तपस्या करते थे और अन्त में योग के द्वारा ब्रह्म का ध्यान करते हुए अपना शरीर छोडते थे। इस प्रकार रघुवंशियो ने वर्णाश्रमधर्म का पूर्णतः पालन करते हुए धर्म की रक्षा की है। इन उदाहरणों से हम धर्मस्वरूप को भलीभाँति समझ सकते हैं।20

संस्कृतवाङ्मय एवं भारतीयवाङ्मय ऐसे ही महान्चरित्रों से परिपूर्ण हैं जो धर्म के संस्थापक, रक्षक एवं पालक हैं, जिनका चरित्र अनुकरणीय है। महाभारत में श्रीकृष्ण कहते है कि -हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ, अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ, अर्थात् वह परम शक्ति या ईश्वर ,परमात्मा, मानवरूप में धरति में अवतरित होकर स्वयं धर्म का पालन करते हुए मनुष्यों को स्वधर्मपालन के लिए सचेत करते हैं। श्रीकृष्ण स्वयं नित्यधर्म के आश्रय है- जैसा श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है-

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।

शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।21। अर्थात् उस अविनाशी परबह्म का और अमृत का तथा नित्यधर्म का और अखण्ड एकरस आनन्द का आश्रय मैं ही हूँ।

गुरुद्रोणाचार्य द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर से कहा गया -हे राजन्! तुम्हारी विजय तो निश्चित है, क्योंकि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे साथ है। जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं ,वहीं विजय है 22अर्थात् धर्म की रक्षा हेतु धर्म के धाम उस अविनाशी ईश्वरप्रदत्त शास्त्रविहित स्वधर्म का पालन करना श्रेयस्कर है।

रामायण और महाभारत में वर्णित श्रीराम एवं श्रीकृष्ण दोनों ही अपने युग के साक्षात् सत्यरूप नित्यधर्म के स्वरूप हैं। जिनके महद्चरित्र से प्रेरित होकर भारतीय धर्मशास्त्रियों ने धर्म का वैविध्य प्रकट किया है। आचार्यमनु ने धर्म को छः प्रकार से वर्णित किया है। 1-वर्णधर्म 2-आश्रमधर्म 3-वर्णाश्रमधर्म 4- गुणधर्म जिसके अन्तर्गत शास्त्रोक्त अभिषेक आदि गुणों से युक्त राजा का प्रजापालन आदि राजधर्म सम्मिलित हैं, 5-निमित्तधर्म प्रायश्चित हेतु किया गया शास्त्रविहितविधान और 6-साधारण धर्म। साधारण धर्म के अन्तर्गत धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध इन दश गुणों को धर्म के लक्षण में समावेशित किया हैं। आचार्य मनु ने संक्षिप्त रूप में भी धर्म के ये पाँच लक्षण कहे गये हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रियनिग्रह 23 । महर्षि याज्ञवल्क्य ने यज्ञ, सदाचार, इन्द्रियों का दमन, जीववध न करना, दान और वेद आदि पढना ये सब धर्म कहे हैं परन्तु इन सबसे बडा धर्म योग द्वारा आत्मा का दर्शन करना कहा है।24- हितोपदेश में यज्ञकरना, अध्ययन करना, दान देना, तप करना सत्यबोलना, धैर्यधारण करना, क्षमाकरना और लोभ न करना ये धर्म के आठ मार्ग बतलाये हैं-

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।

अलोभ इति मार्गोऽयम् धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।

सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् में धर्म के यज्ञ, अध्ययन, दान ये तीन स्कन्ध कहे हैं। -त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति। अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।25 2।13।

धर्म जीवन का सर्वांगीण रूप हैं। मानव की जीवनयात्रा में प्रारम्भ से अन्तिम क्षण तक तथा मृत्यु के बाद भी साथ साथ चलने वाला एकमात्र धर्म ही है जिसको भलीभाँति जानकर थोडा सा भी किया गया शास्त्रविहित कर्म अर्थात् कर्मयोगरूप धर्म हमको महान् अनर्थो से बचाता है। 26

भारतीयवाङ्मय में वर्णित धर्म स्वरूप, स्रोत, धर्म के लक्षणादि विवेचन से सुस्पष्ट है कि जो कार्य और आचरण -व्यक्ति, परिवार, समाज, और राष्ट्र की उन्नति कारक हैं वे धर्म हैं। अयोध्याकाण्ड में श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी को समझाते है- संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। सत्य की भी धर्म में ही प्रतिष्ठा है। मेरे पिता का यह वचन भी धर्म के आश्रित होने से अत्युत्तम है। धर्मात्मा पुरुष को माता-पिता अथवा ब्राह्मण के वचनों के पालन करने की प्रतिज्ञा करके पुनः उसे प्रमाद से

छोड देना, मिथ्या करना कदापि उचित नहीं है। अतः तुम भी धर्म का आश्रय लो, कठोरता छोड दो और मेरे विचारों के अनुसार अपने विचार बनाओ।, सीतामाता भी स्वयं स्वधर्म का पालन करती हुई श्रीराम को स्मरण दिलाती है-धर्म से ही धन मिलता है और धर्म से ही सुख मिलता है। अधिक क्या, धर्म से सब कुछ मिल जाता है।27

जो अपने धर्म को नष्ट करता है, धर्म उसे नष्ट कर देता है, और जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। अतः धर्म की रक्षा धर्माचरण से करनी चाहिए।28 श्रीमद्भगवद्गीता में स्वधर्म पालन का सन्देश दिया है-

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

अर्थात् अच्छी तरह आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणों की कमी वाला अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्म में रहकर मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय देने वाला है। अन्त में श्रीकृष्ण कहते हैं कि सम्पूर्ण धर्म का आश्रय छोडकर केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूगाँ। भाव यह है कि यदि व्यक्ति अज्ञानता के कारण शास्त्रविहितकर्म से भ्रमित हो रहा है तो ऐसी स्थिति में ईश्वर की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है। यद्यपि कर्म तो करना ही होगा - क्योंकि कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता।29

जहाँ भी कर्म होगा धर्मपूर्वक ही हो, धर्म का परित्याग काम, भय, लोभ तथा जीवन के डर से भी नहीं करना चाहिए। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य है तथा जीव नित्य है और जीवन अनित्य है, धर्मपालन आवश्यक है-

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।। 30

प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह भी सन्देश दिया है कि धर्मशास्त्र न भी जाने तब भी धर्मपालन का सहज-सरल मार्ग यह भी है कि जैसा जैसा आचरण श्रेष्ठजन करते हैं उसका अनुकरण कर कार्यक्षेत्र में लगना उचित है। यथा -

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।31

निष्कर्षतः धर्म की सार्वभौमिकता एवं महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान में हम राष्ट्रधर्म, मानवधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, वर्णाश्रमधर्म, काम्यधर्म, विशेषधर्म, गुणधर्म, साधारणधर्म, जातिधर्म, नारीधर्म, सनातनधर्म, कुलधर्म, प्राचीनधर्म, नवीनधर्म, आपद्धर्म, आदि अनेकनाम से ही सही धर्म का नाम ले रहे हैं, धर्म के मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, धर्म को पहिचान रहे हैं। यह भी अवश्यक है कि हम धर्मप्रतिपादक ग्रन्थ पढे, प्राचीन से लेकर अद्यावधि पर्यन्त उन सभी महानपुरुषों-नारियों के चरित्र को पढे,समझे, कैसे उन्होंने स्वधर्मपालन से स्वयं, परिवार, समाज और राष्ट्र उन्नत किया। विशेषकर स्मृतियाँ ,पुराण, आर्षकाव्य,-रामायण-महाभारत, महाकवि कालिदास के ग्रन्थ-रघुवंशम्, महाकवि अश्वघोष के बुद्धचरितम् पं0 अम्बिाकादत्त व्यास-शिवराजविजयम्,, गान्धीचरितम्,विवेकानन्दचरितम्,स्वामीदयानन्दचरितम्,

आदि भारतभूमि में जन्म लेने वाले ऐसे महानविभूतियों के उत्कृष्ट चरित्रों अवश्य पढे। धर्म की व्याख्या या विवेचन करने की अपेक्षा महानचरित्रों का अध्ययन परम आवश्यक है। तभी हम अनुभव करेंगे कि -धर्म शक्ति भी है, ऊर्जा भी है, कर्म भी है, गुण भी है, जीवन की गति भी हैं जिस रूप में धर्म को समझे, धर्मपूर्वक कार्य करें। परिवार, समाज और राष्ट्र सुव्यवस्थित रहेगा। अतः स्वधर्म का त्याग किसी भी स्थिति में क्षम्य नहीं है, किसी भी तरह धर्म का पालन करें।32 साथ ही विधर्म, परधर्म, आभास, उपधर्म और छल अधर्म हैं ये पाप के समान है।33 क्योंकि पापेनापिहितं पापं पापमेवानुर्वते। धर्मेणापिहितो धर्मो धर्ममेवानुवर्तते34 के अनुसार हमे सदैव धर्म का आश्रय लेकर ही कार्य करना चाहिए।

सन्दर्भविवरण-

1- श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।। महर्षिवेदव्यास प्रणीत-महाभारत।

2- मनुस्मृति-अध्याय 2। 6। एवं अ0 2।10।

3- छान्दोग्य-उपनिषद् 2।23 तथा- तैत्तिरीय-उपनिषद् 1।11।

4- मनुस्मृति-1।2।,

5-याज्ञवल्क्यस्मृति- 1।9।

6-यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः । महर्षि कणाद् प्रणीत-वैशेषिकदर्शन । 1। 2।

7-यमार्याः क्रियमाणं तु शंसन्त्यागमवेदिनः। स धर्मो यं विगर्हन्ते तमधर्मं प्रचक्षते। विश्वामित्रस्मृति।

8-धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्माे धारयते प्रजाः।

यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।। महाभारत, कर्णपर्व, 69।59।

9- माधवीया धातुवृत्ति 1।884।

10- मेदिनी 25।16, अमरकोष नानार्थवर्ग 139।, संस्कृत हिन्दी शब्द कोश- वामन शिवराम आप्टे पृ0489।

11- आप0ध0सू0 1।1।2-3।

12-गौतमधर्मसूत्र- वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम््। 1।1।1-2।

13- मनुस्मृति 2। 6।

14-अ-याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय। 7।

14- ब-पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ््गमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश। महर्षि याज्ञवल्क्य ने धर्म के स्थान बताये है- पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चौदह विद्या धर्म के स्थान हैं। याज्ञ0स्मृति-1। 3।, विष्णुपुराण 3।6।28।शुक्रनीति 1।154।,गरुणपुराण 1।93। 3-4।

15- प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास ,डॉ0 शिवस्वरूप सहाय पृ0 02

16-महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण- 3।37।13।

17-महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण- युद्धकाण्ड 28।19

18- रामायण,अरण्यकाण्ड 9।7।

19-रामायण, सुन्दरकाण्ड, 35।10-11।

20- रघुवंशम्, प्रथमसर्ग- 5-8।

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्। आसमुद्रक्षितीशीनामानाकरथर्वत्मनाम्।

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्। यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधितानाम्।

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्। यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेदिनाम्।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्। बाद्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।

21- श्रीमद्भगवद्गीता अ0 14।27।

22--यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः। महाभारत भीष्मपर्व, 6।35-36।

23-अ- धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते। अधीत्य चानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमांगतिम्।-मनुस्मृति - अध्याय 06। 92-93।, ब-अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। मनु0 अध्याय 10। 63।

24- इज्याचारदमाहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च। अयन्तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्। याश्रवल्क्यस्मृति। 1।8।

25-सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद्-2।3।

26-श्रीमद्भगवद्गीता । 2।40।

27-धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्---धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम्।। अयोध्याकाण्ड 21।41-42,44।, धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।ं अरण्यकाण्ड 9।30

28- धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।। मनुस्मृति।8।15।

29-श्रीमद्भगवद्गीता अ0 ।3।35।, अ018।66। , अ0 ।3।5। ,

30- महाभारत,स्वर्गारोहण , 5। 63।

31- श्रीमद्भगवद्गीता अ0 3।21।

32- कथ ंचिदपि धर्मं निषेवेत। चाणक्यसूत्राणि 6।46।

33-विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः। अधर्मशाखा प ंचमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत्।ं।

अस्वस्थ अवस्था में गंगास्नान विधर्म है। सन्यासी द्वारा गृहस्थ का धर्म पालन करना विधर्म है। वर्णाश्रमधर्म के विपरित स्वेच्छा से किया गया धर्म धर्माभास है। लोगों को ठगने अथवा पगदर्शन के लिए सन्यासी का कपट वेश धारण करना उपधर्म अथवा ढोंग है। शब्दमात्र को ग्रहण करना, यथा दान देना चाहिए इस उपदेश वाक्य के अनुसार, व्यर्थ का अनुपयोगी सामान देना छल है। भागवद,7।15।12।

34- महाभारत,शान्तिपर्व,193।28।

शुभमस्तु

वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु से घ´ो प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होता है। जिसका निर्वचनजन्य अर्थ है- ज्ञानराशि। इस ज्ञानराशि को श्रुति कहा जाता है। स्वामी दयानन्द के अनुसार श्रुति अर्थात् वेद तथा स्मृति में वर्णित धर्मानुष्ठान से मानव इहलोक में कीर्ति प्राप्त करता है तथा परलोक में अनुत्तम सुख को प्राप्त करता है।4 महर्षि कणाद के अनुसार धर्म वह है जिसके अनुपालन से इहलोक में अभ्युदय तथा परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो।5

वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु से घ´ो प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होता है। इसका निर्वचनजन्य अर्थ ज्ञानराशि है। स्वामी दयानन्द के अनुसार वेद शब्द की निष्पत्ति इन चार धातुओं से होती है- विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम् ,विदलृ लाभे और विद् विचारणे जिससे वेद शब्द के चार निर्वचन हो सकते हैं- विन्दति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति लभन्ते, विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सत्यविद्यां यैर्येषु वा ते वेदाः अर्थात् जिनसे मनुष्य सत्यविद्या को जानते हैं या प्राप्त करते हैं या विचार करते हैं या विद्वान् होते हैं, वे वेद हैं।1 सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य ही जीव की परमगति है। सत्य ही धर्म, तप और योग है, सत्य ही सनातन ब्रह्म है, सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है तथा सब कुछ सत्यपर ही टिका हुआ है।25